पूज्य लालचंदभाई का प्रवचन
श्री समयसार कलश २७१
ता. ३१-०७-१९९०, प्रवचन नंबर ५१८

यह श्री समयसारजी परमागम शास्त्र है। उसका अंतिम का परिशिष्ठ अधिकार (है)। उसका २७१ नंबर का श्लोक है, अमृतचन्द्र आचार्य भगवान का। उसके ऊपर व्याख्यान हो गए हैं और व्याख्यान छप गए हैं, ग्यारह भाग में। उसके ऊपर से, इसके जो व्याख्यान हैं, गुरुदेव के, उसके स्पष्टीकरण की बात चलती है।

तो विषय यह है कि आत्मा ज्ञानमय है। ज्ञानमय होने से आत्मा केवल जाननहार है, कर्ता नहीं है। ज्ञाता तो है, मगर कर्ता नहीं है। मूल बात है। शुरुआत जैनदर्शन की अकर्ता से, ज्ञाता से होती है। कर्ता से शुरुआत ही नहीं होती है। अकर्ता-ज्ञाता से शुरुआत होती है और पूर्णता भी ज्ञाता से ही होती है। आदि-मध्य-अंत में भगवान आत्मा ज्ञानमय है, इसलिए आत्मा केवल ज्ञाता है, कर्ता नहीं है।

जहाँ-जहाँ कर्ता की बात आवे, वहाँ-वहाँ, वो व्यवहारनय का कथन है, उपचार का कथन है, ऐसा समझकर, उसका श्रद्धान छोड़ देना-ऐसा टोडरमल साहब ने कहा है। जो व्यवहारनय के कथन (का) निरूपण हो, उसको असत्यार्थ मानकर, जानकर, उसका श्रद्धान छोड़ देना और जो कथन निश्चयनय का हो, उसको सत्यार्थ जानकर, मानकर उसका श्रद्धान अंगीकार कर लेना। आहाहा! दो सौ साल पहले की बात है। जयपुर में हो गए, टोडरमल जी। आहाहा! ज्ञानी थे, उनकी वाणी (है) और उन्होंने, उन्होंने जो बनाया है ग्रन्थ को, वह समयसार के अंदर से ही बनाया है। समयसार, प्रवचनसार सब उन्होंने पढ़ लिया था। बहुत शास्त्रों का उनको ज्ञान था, गोम्मटसार आदि का। उस टाइम में उनका क्षयोपशम बड़ा था। उनका यह वचन है कि जितना व्यवहारनय का कथन आवे, जिनागम में...जिनागम में (ही) आता है। निश्चय और व्यवहार नय दो जिनागम में (ही) होते हैं। अन्यमत में तो दो नय है ही नहीं। जितना व्यवहारनय का कथन आवे, उसको असत्यार्थ यानि झूठा, सादी भाषा में। विद्वान की भाषा असत्यार्थ है, विद्वान लोग। विद्वान लोग भाषा बहुत...

मुमुक्षुः- झूठा में घाव पड़ता है। असत्यार्थ कहो।

उत्तरः- अच्छा! झूठा में घाव पड़ता है, यानि जो कर्ताबुद्धिवाला जीव है, उसको घाव पड़ता है। मगर जो आत्मार्थी है, उसको अमृत जैसा लगता है। क्योंकि एक ही भूल है। ज्ञाता को कर्ता मान लिया, वही भूल है।

तो कल दो-चार भाइयों ने मुझे कहा कि ये व्याख्यान आपका, जो गुरुदेव पर स्पष्टीकरण है, वो तो बराबर चालू रखो। मगर आपने दो विभाग किया, तीन-तीन महीने के कोर्स का (किया है)। तो पहले तीन महीने के कोर्स में तो आपने कहा कि कर्ताबुद्धि छोड़ने का प्रयत्न करके आत्मा अकर्ता है, वह निर्णय कर लेना। तो भाईसाहब! ऐसा करो, दस मिनट के लिए उसका व्याख्यान रखो। तीन महीने के

कोर्स का दस मिनट के लिए (रखो), बाकी पचास मिनट तो ये गुरुदेव का व्याख्यान उसके ऊपर स्पष्टीकरण करो ज़रूर। मगर दस मिनट तो हमको समझना है। क्योंकि अनंत-अनंतकाल से....

इतना तो था, आत्मार्थी था। अपने लिए उसने कहा कि मैं तो कर्ता मानता हूँ। देह, मन, वाणी का मैं कर्ता हूँ, ये आठ-कर्म (को) मैं बाँधता हूँ, आयुष्य-कर्म भी मैं बाँधता हूँ। आयुष्य-कर्म कौन बाँधता है? जीव ही बाँधता है। ऐसा उसने कहा कि कर्म का बंधन करनेवाला तो मैं हूँ और उसका स्पष्टीकरण करो कि उपादान से कर्ता हूँ कि निमित्त-कर्ता हूँ मैं। दो भाग करके समझाना ज़रा; और शुभाशुभभाव का मैं ही कर्ता हूँ और मैं ही उसका फल भोक्ता हूँ। जो करे सो भोगवे, सीधी बात है। तो मेरी तो ऐसी मान्यता है कि शुभाशुभभाव मैं करता हूँ, कर्म का बंध मेरे से होता है, देह, मन, वाणी की क्रिया मेरे से होती है, मोटर मेरे से चलती है वगैरह-वगैरह। समझे? आहाहा! तो इसके ऊपर दस मिनट तो कर्तापना का भूत भगाने के लिए दस मिनट रखना।

है ज्ञाता। सब आत्मा हों! आहाहा! स्वभाव से ही ज्ञाता हैं। निश्चयनय से ज्ञाता और व्यवहारनय से कर्ता, ऐसा नहीं है। ज्ञाता, निश्चयनय से अभेद को जानता है और ज्ञाता, व्यवहारनय से भेद को जानता है। मगर कर्ता तो आता नहीं है। जानना, जानना, जानना, जानना, जानना, जानना, जानना आता है। आहाहा! अभेद से तो आत्मा को जानो अभेद से, और उसके पर्यायभेद, गुणभेद जानने का विचार हो, तो जानो। मगर गुण को करना है, ऐसा तो आत्मा में है ही नहीं और पर्याय का करना, ऐसा आत्मा में है ही नहीं क्योंकि स्वयं जो परिणमन प्रगट होता है, उसको करने की अपेक्षा है नहीं। तो इसके बारे में थोड़ा रोजाना दस मिनट चलाना है।

देखो! यह आत्मा है ना, यह अकारक-अवेदक, अकर्ता-ज्ञाता है। तो एक दफ़े ऐसा हुआ कि एक बहन गुरुदेव के व्याख्यान में गई और सुना कि रोटी को करनेवाली माता, बहन, बेटी नहीं है। रोटी तो स्वयं होती है, वह स्वयं पकती (सिकती) है और स्वयं उसका टुकड़ा होता है और स्वयं, आहाहा! दाँत का चलन किये बिना ही (रोटी का) टुकड़ा होता है और गले में उतारने की भावना के बिना गले में उतर जाती है और स्वयं हजम हो जाती है, उसको करनेवाला कोई नहीं है। परमाणु स्वतंत्र है, ऐसी बात है। रोटी का करनेवाला आत्मा नहीं है। (आत्मा) अकर्ता है, ज्ञाता है। अकर्ता ऐसा ज्ञाता है। हों! ज्ञाता के आगे विशेषण लगाया अकर्ता का। विशेषण लगाने का क्या कारण है? कि कर्ताबुद्धि है ना, वो छुड़ाने के लिए अकर्ता ऐसा ज्ञायक-ज्ञातास्वभाव आत्मा का है। तो उसको मस्ती चढ़ गई, बहन को। सोमवार का दिन था और अनुभव कर लिया। दोपहर का टाइम था ३ से ४ का। अनुभव कर लिया। दूसरे दिन फ़झल में (ऐसे ही) उसने पति को बोला कि रोटी का करनेवाला जीव नहीं है। अच्छा! ठीक है! तो पति ने समता से सुन लिया। कि देखो! रोटी (ये) करती (बनाती) है कि नहीं? देखो! (मैं) बाद में कहूँगा, अभी नहीं कहना। मंगलवार हुआ फ़झल में (ऐसे ही) तो रोटी बनाने लगी। कल तो तू कहती थी कि रोटी का कर्ता है, ऐसा जो मानता है, वो अज्ञानी, मिथ्याद्रष्टि हो जाता है और रोटी का अकर्ता है, वो ज्ञानी बनता है। रोटी को जानता है। होने योग्य होता है, रोटी की परमाणु की अर्थपर्याय और व्यंजनपर्याय (होती है)। हो उसको जाने, मगर उसको करे नहीं। कल व्याख्यान में सुनकर आयी थी ना तू? तूने कहा था ना। कि हाँ, मैंने कहा था। मैं आज भी वैसा ही कहती हूँ। मैं फिरती नहीं हूँ। रोटी बनती है और मैं अकर्ता रहती हूँ। बोलो!

विनयपूर्वक, ये क्या बात है? जो अकर्ता हो तो रोटी की क्रिया बंद होनी चाहिए। मार्मिक बात है, अपने (को) शुभाशुभभाव पर ले जाना है। तो दृष्टांत है स्थूल। आहाहा! कि रोटी की क्रिया पहले भी मैं नहीं करती थी, आज भी मैं नहीं करती हूँ। कल मानती थी (कि) मैं, रोटी की क्रिया मेरे से होती है, मिथ्या-मान्यता निकल गयी। मिथ्या-मान्यता निकल जाने से क्या परमाणु की, पुद्गल की क्रिया रुक जाती है? बिल्कुल रूकती नहीं है। समझे? ऐसा! तो पति समझ गया कि बराबर है! मार्मिक बात है थोड़ी, मेरी समझ में नहीं आती है। मगर ठीक है! ठीक है, ऐसा कहा।

दूसरा एक दृष्टांत। एक भाई गया गुरुदेव के पास। (गुरुदेव ने) कहा कि पैर तो चलता है, हाथ हिलता है, शब्द निकलते हैं, जीभ फिरती है, पलकें ऊपर-नीचे करती (होती) हैं, आत्मा उसको करनेवाला नहीं है। अकर्ता-ज्ञाता है, ज्ञायक का हों! बाद में उसका (क्रिया का) ज्ञाता। पहले निश्चय, बाद में व्यवहार। आहाहा! ध्यान में (ही) निश्चय-व्यवहार प्रगट होता है। निश्चय-व्यवहार ध्यान में (ही) प्रगट होता है। निश्चय मोक्षमार्ग, व्यवहार मोक्षमार्ग, वृब्रहद-द्रव्यसंग्रह में लिखा है। आहाहा! निश्चय और व्यवहार, ये दो जो भाव हैं, वो श्रुतज्ञान के अनुभव के काल में निश्चय-व्यवहार प्रगट होते हैं। अज्ञानी के पास निश्चय-व्यवहार नहीं है। तो एक भाई ने बराबर सुन लिया। ओहोहो! मेरे (को) अभिमान हो गया था कि मैं पैर चलाता हूँ, हाथ चलाता हूँ, ये तो मेरा अभिमान था। सचमुच तो कर्ता नहीं हूँ, मैं तो ज्ञाता हूँ। तो उसको अनुभव हो गया। ये सब दृष्टांत है। हों! हाँ! ऐसा बनाव बन गया, ऐसा नहीं मानना। बन जाता है, बनता भी है। तो एक भाई के पास बातचीत हुई उसकी। वो मित्र था। (कहा) कि भाई! पैर चलाना मेरा कार्य नहीं है। चलते-चलते बात करता है कि ये पैर चलता है ना, मेरे से चलता नहीं है। बात करते-करते रुक गया, तो रुक गया तो तूने ठहराया ना पैर (को)? नहीं। वो तो स्वयं उसकी क्रिया, भाववती, क्रियावती-शक्ति उसमें है तो क्षेत्र से क्षेत्रान्तर परमाणु होता है। मैं करनेवाला नहीं हूँ। माने कौन? आहाहा! ऐसा उसने प्रश्न किया कि जो तू अकर्ता हो, तो हाथ-पैर हिलना नहीं चाहिए। स्थिर हो जाना चाहिए। हाथ-पैर की क्रिया बंद होनी चाहिए। उसका प्रश्न, मित्र का, कर्ताबुद्धिवाले का, अभिमानी का। अभिमान चढ़ गया, मैं करनेवाला हूँ। वही पाप है बड़ा, मिथ्यात्व का। बड़ा पाप है, छोटा पाप नहीं है।

टोडरमल साहब ने तो यहाँ तक कहा कि मिथ्यात्व का छोटे से छोटा टुकड़ा भी बुरा है। आहाहा! दुःख का कारण है। कषाय की तीव्रता और मंदता के अंदर में तो चारगति मिलती है। तीव्रकषाय से नरक और तिर्यंच और मन्दकषाय से देवगति और मनुष्यगति (मिलती है)। कषाय, चारित्र की कषाय की बात मैं करता हूँ। चारित्र की कषाय के अंदर तीव्र और मंद, दो भेद पड़ते हैं ना? उसका फल तो चार गति है और सम्यग्दर्शन का फल मोक्ष, पंचमगति है और मिथ्यात्व का फल निगोद है, वो दो नित्य गति है।

चारित्र का दोष सबको दिखाई देवे, मगर मिथ्यात्व का दोष उसको दिखाई देता नहीं है और दूसरों को भी दिखाई नहीं देता (है)। वो तो अभिप्राय के अंदर की बात है। कौन जाने? वह जाने या तो परमात्मा जाने।

अभी तीसरी अंदर की बात आई, शुभाशुभभाव की। शुभाशुभभाव तो आत्मा ही करता है। आत्मा ही कर्ता है और आत्मा उसका फल का अकेला भोक्ता है। ऐसे तो ठाम-ठाम (जगह-जगह) जिनागम में शास्त्र भरे हैं। हज़ारो पन्नों में लिखा है कि आत्मा स्वयं अपने स्वभाव को भूलकर, आत्मा ही राग का कर्ता

है और आत्मा ही राग के फल का, दुःख का भोक्ता, आत्मा ही है। मगर आत्मा एक है, उसके दो पहलू हैं-सामान्य और विशेष। वो अपूर्व जैनदर्शन की बात है। एक सामान्य पहलू, पड़खा, साइड और एक विशेष। सामान्य में क्या है और विशेष में क्या होता है? सामान्य-तत्व कैसा है और विशेष-तत्व क्या है और उसमें क्या होता है? कि सामान्य-तत्व में क्रिया ही नहीं होती है। अनंतगुण हैं ना, अनंतगुण। एक-एक गुण परमपारिणामिकभाव से विराजमान है, परिपूर्ण परमात्मा। ऐसे अनंतगुण का पिंड जो द्रव्य है, वो द्रव्यस्वभाव सामान्य-तत्व है। उसमें क्रिया का अभाव है। बंध-मोक्ष की क्रिया उसमें नहीं होती है। वो तो त्रिकाल मुक्त है। आहाहा! बंधता ही नहीं है, तो छूटता भी नहीं है। जो बंधता है, वह तो छूट सकता है। मगर वो तो त्रिकाल अबंध-स्वभावी मुक्त परमात्मा है। एक तो यह पहलू साइड है।

दूसरा पड़खा (पहलू), पर्याय का पड़खा है। उत्पाद-व्यय, उत्पाद-व्यय, उत्पाद-व्यय, उत्पाद-व्यय। परिणाम उत्पन्न होता है, अनंतगुण की अनंत पर्याय एक समय में उत्पन्न होती है और व्यय होती है। उत्पाद-व्यय होता है। एक समय के आयुष्यवाली पर्याय है। आयुष्य कितना? एक समय का है, उसका। वो जो परिणाम शुभाशुभ होता है, वो शुभाशुभभाव सामान्य में नहीं होता है, विशेष में होता है। कोई कहे कि विशेष में शुभाशुभभाव नहीं होता है, वो उसकी भूल है और शुभाशुभभाव विशेष में होता है, इसलिए सामान्य उसको करता है, वो भी उसकी मिथ्यात्व की भूल है। क्या कहा? होता तो है पर्याय में। नहीं होता है, ऐसी बात नहीं है।

अपने एजेंडा पर विषय यह है कि आत्मा ज्ञाता है, कर्ता नहीं है। वो अपने एजेंडा का विषय चालू है, चालू है। तो शुभाशुभभाव पर्याय में तो होता है, आश्रव-बंध होता है, पुण्य-पाप होता है, पर्याय में। नहीं होता, ऐसा नहीं है। साधक को भी थोड़ा अविरत सम्यग्दृष्टि हो, तो भी शुभाशुभभाव होता है। पंचम गुणस्थानवाला, (उसको) दो कषाय का अभाव है, उसको थोड़ा अशुभ, ज़्यादा शुभ (होता है) और छठे, सातवे गुणस्थान (में) मुनिराज (को) अकेला शुभभाव होता है। शुभभाव, शुभाशुभभाव होता है। नहीं होता है, ऐसा नहीं है। मगर उसका करनेवाला आत्मा नहीं है। होने पर भी, आत्मा अकर्ता रहता है। हाथ-पाँव हिलता है, तो भी आत्मा अकर्ता (रहता है)। प्रेमचंदभाई! (अकर्ता) रहता है कि कर्ता बन जाता है? मानता (तो) है (कर्ता), मगर कर्ता बनता (नहीं है)।

त्रिकाली द्रव्य सामान्य अपना अकर्तास्वभाव, निजभाव को छोड़ता नहीं है और कर्ता बनता (नहीं है)। कर्ता माने तो भी कर्ता नहीं बनता है। वो तो अकर्ता रहता है। त्रिकाल, परमात्मा। आहाहा! तो परमात्मा है, परमात्मा क्या शुभाशुभभाव को करे? अच्छा! पाप तो न करे मगर पुण्य को तो करे कि नहीं? अरे भैया! आश्रव और आत्मा भिन्न-भिन्न हैं। आत्मा में आश्रव का अभाव है। आश्रव में जीवतत्व का अभाव है। दो चीज़ अलग-अलग हैं। तो एक भाव दूसरे भाव को करे, वो बात जिनागम में नहीं है। अज्ञान के घर में है। वो अज्ञान के घर में तो मान्यता है, मगर आत्मा, भगवान आत्मा तो ज्ञाता-अकर्ता है। वो अपने को जानते-जानते पर्याय का दोष भी जान लेवे (और) पर्याय में गुण हों, वो भी जान लेवे। मगर गुण-दोष का उत्पादक भगवान आत्मा नहीं है। आहाहा! ऐसा अकर्ता है आत्मा।

तो पहले जो है, तीन महीने का है कोर्स, वो बराबर पक्का करने जैसी चीज़ है। इसके लिए कर्ता-कर्म अधिकार का अध्ययन करना और ३२० गाथा का भी अध्ययन साथ-साथ में ज़रूर करना। कर्ता-कर्म

अधिकार का वो कलश है। ३२० गाथा है ना, कर्ता-कर्म अधिकार का कलश, कलश। मंदिर के ऊपर कलश चढ़ाता है ना, ऐसा ३२० गाथा है, (उसमें) अकारक-अवेदक (बताया है)। तो अभी वो तीन महीने के कोर्स की थोड़ी बात हो गयी। बहुत टाइम हुआ। अच्छा!

अभी चालू अपना विषय, लेता हूँ। गुरुदेव का व्याख्यान। और दोपहर को चर्चा भी है ४.१५ से ५। प्रश्न होवे तो लिखकर देना। लिखकर देना प्रश्न। कोई विद्वान प्रश्न बोलेगा तो, जवाब इधर से देंगे। यह इधर से है।

[ज्ञान-ज्ञेय-ज्ञातृमत्-वस्तुमात्रः ज्ञेयः] ज्ञान-ज्ञेय-ज्ञातामय वस्तुमात्र जानना चाहिये। भगवान आत्मा ज्ञाता भी है, ज्ञेय भी है और ज्ञान भी है। अब इसमें राग की बात लिखी नहीं है। क्यों लिखी नहीं है? लिखा क्यों नहीं है? लिखा क्यों नहीं है (ये) मेरा प्रश्न है। कि इसमें राग है ही नहीं इसलिए नहीं लिखा है। तेरे को राग दिखता है, ज्ञानी को ज्ञान दिखता है। बड़ा अंतर है! आहाहा! आदि-मध्य-अंत में द्रव्य-गुण-पर्याय में ज्ञान है।

द्रव्य में चेतन, गुण-चैतन्य और ज्ञान की पर्याय में चेतना होती है। अरिहंत के साथ मिला लो, मिल जायेगी और मोह का नाश हो जायेगा। आहाहा! राग की बात छोड़ दे अभी। इतना (महान) गुरु मिला और राग करना, राग करना, राग करना, शुभभाव करना, करना, करना। आहाहा! ये स्व-पर घातक वाणी है। आहाहा! 'ज्ञान का करना' (ऐसा) कहना, वो भी कथंचित् है। आत्मज्ञान का, हो! शास्त्रज्ञान की बात नहीं है। ऐसी बात है।

हमारे ऊपर उपसर्ग तो पहले से ही आता रहता था। अभी भी उपसर्ग तो आता है, मेरे ऊपर। समझे? शुरूआत की बात मैं करता हूँ। गुरुदेव की हाज़री में वो हमारे यहाँ एक वाँचनकार गुजर गए। तो वाँचन करने का किसी को कहते नहीं थे गुरुदेव। मगर मेरे को कहा था लालभाई वो आपको संभालना है (वाँचन करना है)। मैंने कहा कि (गुरुदेव) अभी आपका परिचय कम है। परिचय की बहुत ज़रूरत है। मैं तो अभी सीखने वाला हूँ। मैं बालक हूँ। वाँचन कैसे करूँ? करना। बस! आदेश दे दिया तो मैं तो (वाँचन करने) बैठ गया। गुरु-वचन मस्तक पर चढ़ा लिया। अपना हित होगा इसमें, ऐसा समझकर। शक्ति नहीं थी वाँचन करने की। तो भी मैं बैठ गया।

एक साल हुआ, तो बाद में एक मुमुक्षु भाई ने कहा कि लालचंदभाई आप वीतराग की बात तो करते हो, बहुत बढ़िया है। वीतराग की बात तो, वीतरागभाव ही करने जैसा है, वो बात तो सही है। मगर थोड़ा शुभभाव (करना), वो भूमिका है ना? पात्रता के लिए थोड़ा शुभभाव करना, ऐसी बात भी करना चाहिए। वो प्रतिष्ठित आदमी थे, संघ के अंदर में। आहाहा! मैंने कहा कि कल से दूसरे (किसी और) को इधर बिठा दो। मैं वीतराग की गादी पर बैठकर, शुभराग को करना, वो मैं कहनेवाला नहीं हूँ। कल से दूसरे को (यहाँ) बिठा दो। मैं वाँचन करनेवाला नहीं हूँ। समझे? ये उपसर्ग आया। बहुत साल की बात है। १४ (चौद) की साल (में)। (अभी) पैंतालीसवा साल हुआ। इकतीस साल पहले की बात है। आहाहा! (ये कहना) मेरा काम नहीं है। ये वीतराग की गादी है। आहाहा! ज्ञान का करना, आत्मज्ञान का करना, भेदज्ञान का करना, वो तो मैं कहूँगा। मगर राग का करना, आहाहा! उसमें तो मिथ्यात्व का दोष लगता है। आहाहा! वो मेरा काम नहीं है। वाँचन करने के लिए मेरा जन्म नहीं है। मेरा हित करने के लिए मेरा जन्म

है। मेरा काम नहीं है, दूसरे को बैठा दो। समझे? तो किसी को बैठाया तो नहीं। बिठाया नहीं। सेक्रेटरी ने कहा, बराबर है। कोई कहे तो सुन लेना। उसमें क्या? समाज तो बड़ी है ना और व्यवहार का पक्ष तो है।

व्यवहार का पक्ष यानि कर्ताबुद्धि का पक्ष। शुभभाव से धर्म है और पुण्य से धर्म होता है, वो बात नहीं, कर्ताबुद्धि। आहाहा! अकारक को कर्ता कहना, आहाहा! वो बड़ा मिथ्यात्व का दोष लगता है।

बाद में, बहुत साल पीछे, वहाँ वाँचन तो चालू था। बहुत साल पीछे, ऐसे एक भाई ने कहा कि लालचंदभाई! आप भेदज्ञान की बात तो बराबर कहते हैं। आत्मा ज्ञानमयी है, आत्मा को जानना वो प्रथम क्रिया है। प्रथम आत्मा को जानना चाहिए, वो बात तो जचती है। निश्चय की बात तो आपकी बराबर है। मगर थोड़ी व्यवहार की बात कर दो ना, तो सोने में सुगंध मिल जाये। मैंने कहा, कल से ज़रूर मैं व्यवहार की बात करूँगा। खुश-खुश होकर (वो) घर चला गया। खुश हो गया। व्यवहार की बात कल से ज़रूर करूँगा। खुश हो गया। और भी (लोग) खुश हो गए (जो) व्यवहार के पक्षवाले (थे)। व्यवहार के पक्षवाले जगह-जगह (ठाम-ठाम) मिलेंगे। अनुभवी कम और निश्चय के पक्षवाले भी कम (होते हैं)। तीनोंकाल कम होते हैं, तीनोंकाल। आज की बात नहीं करता हूँ। तीनोंकाल ऐसा ही होता है।

दूसरे दिन, वो व्यवहार की बात मैंने निकाली। मैंने कहा, ये जो शुभाशुभभाव आता है और परिणाम में होता है। ख्याल रखना, ऐसा कहा। करता है, ऐसा नहीं (कहा)। परिणाम में, उसके स्वकाल में शुभाशुभभाव होता है, उससे आत्मा भिन्न है ऐसा बार-बार विचार करना, उसका नाम व्यवहार है। वो व्यवहार, निश्चय के लिए अनुकूल है। शुभभाव करना, वो तो अज्ञान है। आहाहा! तो चुप हो गया। क्या करें? 'ना' तो बोल सके नहीं।

शुभाशुभभाव होता है ज़रूर। नहीं होता है, ऐसा (हो, तब) तो वो सिद्ध परमात्मा हो गया। ऐसा नहीं है। होने दो। शुभाशुभभाव उसके स्वकाल में आता है, जाता है, टिकता तो नहीं है। ज्ञान टिकता है, शुभाशुभभाव आता है और चले जाता है। ज्ञान आता भी नहीं है और जाता भी नहीं है, ज्ञायक तो ऐसा का ऐसा रहता है। तो ऐसा कहा, भेदज्ञान का, वो व्यवहार है। वो व्यवहार अनुकूल है। अनुकूल क्यों? कि राग की कर्ताबुद्धि में मिथ्यात्व दृढ़ हो जाता है, तीव्र हो जाता है। मिथ्यात्व तो है ही, अनुभव के पहले। मिथ्यात्व दृढ़ हो जाता है और भेदज्ञान के अंदर मिथ्यात्व गलता है, गर्भित शुद्धता आती है और तत्व-विचार में कषाय की मंदता तो सहज ही हो जाती है। शुभभाव तो सहज ही हो जाता है। कर्ताबुद्धि बिना हो जाता है। तत्व-विचार में लगता है जीव। प्रेमचंदजी साहब! तत्व-विचार में लगता है, तो तीव्रकषाय तो होती ही नहीं है, उस टाइम। सहज में कषाय की मंदता तो कर्ताबुद्धि बिना, इच्छा बिना, अभिलाषा बिना, सहज में होती है। मगर वहाँ उसका लक्ष्य नहीं है। वहाँ क्या होता है? कषाय की तीव्रता या मंदता, वो (वहाँ पर) लक्ष्य नहीं है। लक्ष्य तो आत्मा (के) ऊपर है। मैं ज्ञानमय आत्मा हूँ और ज्ञान में समय-समय पर मेरा आत्मा ही जानने में आ रहा है, ऐसा सर्वज्ञ भगवान का वचन है, कुन्दकुन्द की वाणी है, अमृत जैसी वाणी है। ऐसा बार-बार विचार करने से अनुभव के पहले मिथ्यात्व गलता है। गलता है, गलता है तो टल जाता है। गलते-गलते टल जाता है। मगर कर्ताबुद्धि से पाप का परिणाम तो टलता है, मगर पुण्य का परिणाम होता है (टलता नहीं है), मगर मिथ्यात्व (और) दृढ़ हो जाता है। पुण्य का परिणाम तो होता है, कषाय की मंदता में। मगर मैं करनेवाला हूँ, द्रष्टि वहाँ पर्याय पर है ना। आहाहा! मैं ज्ञाता हूँ, वो तो वहाँ आया ही

नहीं, पक्ष में ही नहीं आया (अभी)। इसलिए अभी, आत्मा का ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय आत्मा है, इसमें तो राग की बात तो आयी नहीं कुछ। आत्मा ही ज्ञान, आत्मा ही ज्ञेय और आत्मा ही ज्ञाता। राग कहाँ कहा? कि उसके घर में गया, वो आश्रवतत्व में निकाल देना। इधर तो जीवतत्व की बात है और जीवतत्व का अनुभव कैसे हो, ये प्रक्रिया अभी चलती है। दूसरा तीन महीने का कोर्स है। आहाहा!

उसका कर्तापना तो, नहीं चौथा पेज है।

स्वयं ही ज्ञाता-इसप्रकार ज्ञान-ज्ञेय-ज्ञातारूप तीनों भावयुक्त वस्तु मात्र जानना चाहिये। ये जो वस्तु है ना, आत्मा। वस्तु यानि उसमें गुण पर्याय बसे, गुण पर्याय बसे, उसका नाम वस्तु है। उसका दो प्रकार पड़ता है, वस्तु का। जिसमें गुणों बसें, उसका नाम भी वस्तु है, वो द्रष्टि का विषय है, वो श्रद्धा का विषय है। और जिसके अंदर गुण भी बसें और ज्ञान पर्याय भी बसे, इसका नाम (भी) वस्तु है। ये ज्ञेय-प्रधान कथन है (और) वो द्रष्टि-प्रधान कथन है। इधर चलता है ज्ञेय-प्रधान कथन। आहाहा!

कल एक प्रश्न मुमुक्षु का आया था। कल ऐसा आया था ना कि ज्ञान की पर्याय स्वपरप्रकाशक (है)। स्वपर का प्रतिभास हो, ऐसी ज्ञान की पर्याय जानने में आती है। ज्ञान में ज्ञान की पर्याय जानने में आती है। तो जो ज्ञान की पर्याय को जानता है, वो ज्ञायक तक पहुँच जाता है और अभेद हो जाता है और अनुभव हो जाता है। तो एक भाई का प्रश्न आया था कल कि ज्ञान की (ही) पर्याय जानने में आवे, भले उसने कहा नहीं, उसने कहा नहीं, मगर ऐसा हो जाता है कि (कहीं) पर्यायद्रष्टि तो नहीं होती है ना? ज्ञान की पर्याय को जाने, ज्ञायक को जाने, तो तो प्रश्न नहीं था। ज्ञान की पर्याय को जाने, वो ज्ञायक में आ जाता है। ऐसा कहा ना कल, तो इसके ऊपर प्रश्न तो होता है। तो मैंने कहा देखो! एक अमितगति आचार्य भगवान का योगसार है, शास्त्र। उसको निर्जरा अधिकार की पाँचवी-छठवीं गाथा भी बता दिया, देख लेना। उसने देख लिया होगा। देखा होगा। खात्री (भरोसा) है, ऐसा मुमुक्षु पात्र जीव (है)। आहाहा! आत्मार्थी है वह जीव। (उसने) ऐसा प्रश्न किया अपने समझने के लिए। तो उसका खुलासा मैं करूँगा।

कल, ज्ञान की पर्याय को जानने से ज्ञायक जानने में आता है ना, ऐसा आया था ना? तो उसका खुलासा करूँगा। कोई प्रश्न करे एक, तो दूसरे के लिए भी खुलासा करना चाहिए। तो अमितगति आचार्य भगवान का एक योगसार नाम का शास्त्र है। एक योगीन्दुदेव ने भी १०८ योगसार, १०८ बनाया है, और एक अमितगति आचार्य हो गए, समर्थ भावलिंगी संत, आहाहा! उनका एक योगसार है। उसमें निर्जरा अधिकार में वो बात लिया (है)। तो पहले उन्होंने एक दृष्टांत दिया। जगत को सरलता (से) समझने में आवे, इसके लिए एक दृष्टांत दिया, कि सुनो भाई! एक प्रकाशक है और एक प्रकाश उसकी पर्याय है। दीपक है ना दीपक, दीपक का नाम प्रकाशक और उसका जो प्रकाश होता है, उसका नाम प्रकाश। बराबर? दो बात हुई। और तीसरी बात। जो घट-पट उसमें दिखता है, उसका नाम प्रकाश्य। प्रकाशक, प्रकाश और प्रकाश्य। तो देख भैया! कि दीपक के प्रकाश के द्वारा, प्रकाश से भिन्न, प्रकाशक से भी भिन्न और प्रकाश से भी भिन्न, घट-पट तेरे को दिखाई देते हैं। कि हाँ साहब! वो तो बराबर दिखाई देता है। तो मेरा प्रश्न है कि जो भिन्न है, उसको तू देखता है और (वो) दिखाई देता है और जो प्रकाश से अभिन्न प्रकाशक है, वो (तुझे) दिखाई, वो नहीं देता है? प्रकाश भी गया और प्रकाशक भी गया। घट रह गया। यानि अंधकार हो गया। समझा? अज्ञान-अंधकार हो गया उसको। हमको तो आश्चर्य लगता है कि ये क्या

बात है? आहाहा! तेरे को प्रकाश नहीं ख्याल में आता है? हाँ! तो ऐसा कर। घट से व्यावृत्त होकर प्रकाश पर आजा कि प्रकाश दिखता है। दीपक तक नहीं पहुँचे तो क्षम्य है। कोई परेशानी नहीं। जो प्रकाश दिखता है तेरे को, तो प्रकाश और प्रकाशक कथंचित् अभिन्न होने से प्रकाशक दिख जायेगा। गारंटी से मैं कहता हूँ। आहाहा! गारंटी देते हैं। आहाहा! पर्यायद्रष्टि नहीं होगी। द्रव्यद्रष्टि बन जायेगी। आहाहा! ऐसे दृष्टांत पूरा हो गया।

अभी सिद्धांत, कि आत्मा ज्ञायक है, द्रव्य। ज्ञायक तो है ना और उसमें उपयोग तो प्रगट होता है ना, समय-समय पर। जानने की क्रिया, ज्ञप्ति क्रिया तो होती है, सबके पास। तो ज्ञायक ये द्रव्य है, ज्ञान उसका परिणाम है और जो ज्ञेय है, परपदार्थ, वो उसका ज्ञेय है। ज्ञान का ज्ञेय है। ये ज्ञान इधर है, ज्ञायक है और उधर ज्ञेय है। तो जो ज्ञान से ज्ञेय भिन्न है, वो तेरे को दिखाई देता है। तेरे को जानने में आता है, ज्ञेय। ये ज्ञेय है ना? ये ज्ञेय ज्ञान से भिन्न है कि नहीं? भिन्न है। तो जो भिन्न है वो तेरे को दिखाई देता है और ज्ञान से जो अभिन्न है आत्मा, वो तेरे को दिखाई नहीं देता है? कि मेरे को दिखाई नहीं देता है। तो थोड़ा सरल शब्द में बताओ। तो कहा, ऐसा कर तू। ज्ञेय से व्यावृत्त हो जा। ज्ञेय से व्यावृत्त होकर, ये (ज्ञेय) नहीं जानने में आता है, मेरा ज्ञान (ही) जानने में आता है (ऐसे) ज्ञेय से हटकर ज्ञान में आ जा, पर्याय में। हो! द्रव्य में नहीं अभी। ज्ञान दिखता है, मेरे को ज्ञान जानने में आता है। तो ज्ञान को जो जानता है तू, तो ज्ञान और ज्ञायक कथंचित् अभिन्न होने से, वो ज्ञायक का दर्शन तेरे को हो जायेगा। ऐसा पाठ है। आहाहा! वो सरल है बहुत।

ये द्रष्टि का जो विषय है, वो द्रष्टि में पकड़ना थोड़ा कठिन है। मगर ये ज्ञान-प्रधान, ज्ञेय-प्रधान जो प्रक्रिया है, थोड़ी सरल है। ज़्यादा सरल है। समझ में सबको आ जावे झटपट, ऐसी है। आहाहा! मगर ज्ञान होता है, ऐसा लेना चाहिए। राग को भूल जाना चाहिए। पर्याय में, पराश्रित पर्याय में होने पर भी, आहाहा! उसको मत याद कर। उसको गौण करके लक्ष्य छोड़ दे उसका और इधर लक्ष्य करके, मेरे में (तो) ज्ञान हुआ। ज्ञान होता है, वो ज्ञान में राग जानने में आता है, ऐसा भी नहीं है। ज्ञायक जानने में आता है क्योंकि राग और ज्ञान भिन्न हैं। ज्ञान में राग नहीं है, एकत्व नहीं है, इसलिए वो जानने में नहीं आता है और ज्ञान, ज्ञायक के अंदर एकत्व है, तो ज्ञायक जानने में आता है। ज्ञान, ज्ञायक से तन्मय है और राग से अतन्मय है, इसलिए राग का कर्ता नहीं है और राग का ज्ञाता भी नहीं है। छोड़ दे बात। आहाहा!

ये अभी दूसरा पाठ चलता है। आहाहा! पहले पाठ के अनुसंधान में कल एक प्रश्न आया था। जिज्ञासु का प्रश्न था। उसका खुलासा अमितगति आचार्य का है। घर जाकर पढ़ लेना। आहाहा! शास्त्र में सब कुछ बात है। अपने हित के लिए, करुणा करके शास्त्र लिख दिया है। आहाहा!

स्वयं ही ज्ञाता-इस प्रकार ज्ञान-ज्ञेय-ज्ञातारूप तीनों भावयुक्त वस्तुमात्र जानना चाहिये। उसमें राग को याद नहीं किया। क्यों याद नहीं किया? कि राग है ही नहीं। आहाहा! अरिहंत में हो, तो मेरे में हो. अरे! क्या कहते हैं? हाँ! ऐसा है। कुन्दकुन्द भगवान ने फ़रमाया है, वो प्रवचनसार की ८० नंबर की गाथा है। गाथा का आधार देता हूँ कि जैसा अरिहंत के द्रव्य में चेतन, गुण चैतन्य और उसकी पर्याय में जानना होता है-चेतना, वैसा मेरा आत्मा भी चेतनरूप (है)। द्रव्य और गुण तेरे चैतन्य हैं और क्रिया होती है ज्ञान की। आहाहा! ऐसा तीन लेकर, वहाँ (भेद) से लक्ष्य छोड़कर, (अरिहंत से) मिलाकर, इधर आना।

वहाँ देखना पहले, वहाँ देखकर इधर देखना। इधर तीन भेद देखना। तीन भेद के बाद अभेद कर देना। आहाहा! अभेद हो जाता है, तो अनुभूति हो जाती है। मोह क्षय हो जाता है, ऐसा मोह क्षय का पाठ है, उसमें। दर्शनमोह के क्षय का पाठ है।

इस प्रकार ज्ञान-ज्ञेय-ज्ञातारूप तीनों भावयुक्त वस्तुमात्र जानना चाहिये। मैं तो ज्ञानमय हूँ!

(अनुष्टुभ्)

आत्मा ज्ञानं स्वयं ज्ञानं ज्ञानादन्यत्करोति किम् ।
परभावस्य कर्तात्मा मोहोऽयं व्यवहारिणाम् ॥६२॥

अर्थात् पाप का परिणाम करे, वो मोही और पुण्य का परिणाम करे वो निर्मोही, ऐसा है? नहीं? पाप तो छोड़ने जैसा है और पुण्य तो करने जैसा है, ऐसा नहीं है।

(अनुष्टुभ्)

आत्मा ज्ञानं स्वयं ज्ञानं ज्ञानादन्यत्करोति किम् ।

यह जानने की क्रिया के सिवा कुछ करनेवाला नहीं (है)। आहाहा! प्रभु! बहुत शुभाशुभभाव के, कर्ताबुद्धि (के), संस्कार निगोद के हैं। ये संस्कार निर्मूल करने जैसे हैं। अगृहीत मिथ्यात्व है यह। आहाहा!

ज्ञान-ज्ञेय-ज्ञातारूप तीनों भावयुक्त वस्तुमात्र जानना चाहिये। ज्ञेयों के आकार से होनेवाले ज्ञान की कल्लोलों के रूप में परिणमित होता हुआ... इनटु कोमा है। अभी उसमें बुक में होगा। बुक में होगा। है ना गमनभाई?

ज्ञेयों के आकार से यानि उसका जैसा स्वरुप है। आकार यानि जैसा स्वरुप है। **होनेवाले ज्ञान की कल्लोलों के रूप में**, कल्लोलों यानि ज्ञान की पर्याय अपनी। **रूप में परिणमित होता हुआ** बस! अभी उसका खुलासा। **यह व्यवहार से कहा है।** यानि निश्चय से क्या है? कि वो जानने में आता नहीं है, ज्ञान जानने में आता है। प्रतिभास होता है, प्रतिबिम्ब होता है, झलकता है ज्ञान की स्वच्छता में। नहीं झलकता है, ऐसा नहीं है। झलकन नहीं निकालना है। झलकन अंदर में आयी, वो नहीं निकालना है।

दर्पण में कोयले के कालापन की झलक आयी तो दर्पण काला हो गया, ऐसा नहीं है और उसका कालापना का प्रतिभास निकालो, तो दर्पण स्वच्छ है, ऐसा भी नहीं है। (वो) काला हुआ ही नहीं है। वो तो दर्पण की स्वच्छता का प्रकार है। वो कोयले का कालापना ही नहीं है। आहाहा! ऐसा **यह व्यवहार से कहा यह व्यवहार से कहा है, हों! हों!** ऐसा कहा है। व्यवहार का कथन है।

वो वाक्य, स्टीकर लगा देना, घर में। टोडरमल जी साहब का जो स्टीकर है ना? स्टीकर निकला है। वहाँ राजकोट से बनाया है, स्टीकर। घर पर है। तो वो लगा देना वहाँ कि, 'निश्चयनय से जितना निरूपण हो, वो सत्यार्थ जानकार, उसका श्रद्धान अंगीकार करना और व्यवहारनय से जितना निरूपण है, वो असत्यार्थ जानकार उसका श्रद्धान छोड़ना।' आहाहा! बोलो! वो भेदज्ञान है उसमें। निश्चय के, व्यवहार के बीच में भेदज्ञान है।

सारा समयसार भेदज्ञान से भरा है। आहाहा! सारा जिनागम। समयसार क्या? चारों अनुयोग, ये सब भेदज्ञान से भरे हैं। **यह व्यवहार से कहा है, हों। वास्तव में तो ज्ञेयों का**, अब ज्ञेयों का अर्थ। **छह द्रव्यों का जैसा स्वरुप है, उसे जानने के विषयरूप परिणमित होना, विशेषरूप परिणमित होना,**

वह ज्ञान की अपनी दशा है। उसकी दशा इधर नहीं आयी। वो ज्ञान की अपनी दशा है। दशा यानि परिणाम है अपना। **और वह (दशा) ज्ञान के स्वयं के सामर्थ्य से है।** वो है, ये ज्ञेय है, तो ज्ञान ज्ञेय को जानता है, ऐसा नहीं है। पराधीन नहीं है। ज्ञान का स्वकाल, सामर्थ्य ऐसा है कि उसमें वो झलकता है स्वयं, तो वो ज्ञान की पर्याय को जानता है। तो वो अपने सामर्थ्य से स्वपरप्रकाशक है। ज्ञेय से ज्ञान नहीं है, ज्ञेय का ज्ञान नहीं है। ज्ञेय से ज्ञान नहीं होता है और ज्ञेय का भी ज्ञान नहीं होता है। ज्ञेय से ज्ञान हो तो ज्ञान पराधीन हो जाता है और ज्ञेय का ज्ञान हो तो ज्ञान जड़ हो जाता है। पुद्गल का ज्ञान नहीं होता है। शब्द का ज्ञान किसी को नहीं होता है। शब्द का ज्ञान किसी को नहीं होता है। शब्द का ज्ञान जो हो जावे, तो ज्ञान जड़ होता है। वो सब समयसार में लिखा है हो।

सारी बात तो कैसे कह सकें एक घंटे में? थोड़ा नमूना कह देवें। आहाहा!

बहुत गड़बड़ी हो गयी, ज्ञेय से ज्ञान होता है, शास्त्र से ज्ञान होता है। आहाहा! भैया, शास्त्र तो जब ज्ञान की पर्याय आत्मसन्मुख होती है और अनुभव होता है, तो पूर्व के काल में शास्त्र का ये पठन-पाठन करता है, तो उपचार से शास्त्र से ज्ञान हुआ, ऐसा कहा जाता है। मगर वो भी भूत नैगमनय का कथन है। शास्त्र के लक्ष्य से आत्मा का ज्ञान नहीं होता है। शास्त्र का लक्ष्य छूट जाता है। शास्त्र ने कहा कि मेरा लक्ष्य छोड़ दे। शास्त्र में पढ़ा उसने कि मेरा लक्ष्य (छोड़ दे)। जिनवाणी कहती है कि मेरा लक्ष्य छोड़ दे। अच्छा! जिनवाणी ऐसा कहती है? कि हाँ! (जो ऐसा कहती है) उसका नाम ही जिनवाणी है। मेरा लक्ष्य कर (ऐसा जो कहे), वो जिनवाणी, ऐसा है ही नहीं। लिखा ही नहीं है। उसको वाँचना ही आता नहीं है। आहाहा! ऐसा लिखा नहीं है।

निमित्त से उपादान में कार्य होता है, ऐसा लिखा नहीं। त्रिकाली-उपादान में, क्षणिक-उपादान, कार्य (तो) क्षणिक-उपादान से होता है। पर से नहीं होता है और त्रिकाली उपादान से भी (नहीं होता है)। ऐसी अपूर्व बात है। आहाहा! ये तो गुरुदेव के प्रताप से बात बाहर आ गयी। बाकी शास्त्र में थी। आहाहा! कल भाई साहब ने बताया था कि शास्त्र का स्पष्टीकरण (उकेल) करनेवाला भी उनके पहले कोई नहीं था। शास्त्र, समयसार तो पढ़ते थे, उस टाइम में। गुरुदेव के पहले जमाने में पढ़ते थे, हमको मालूम है सब। मगर उसका रहस्य किसी के ज्ञान में आया नहीं। पूर्व का संस्कार (है)। आहाहा! जैसे कुन्दकुन्द आचार्य भगवान वहाँ गए थे, आठ दिन रहे थे। समझे? वहाँ से आकर के लिखा। वो तो इधर से गए थे। मगर गुरुदेव तो वहाँ से आये हैं। आहाहा! मानो कि न मानो। वो तो स्वतंत्र जीव है। आहाहा!

उसे जानने के विशेषरूप परिणमित होना, वह ज्ञान की अपनी दशा है स्वतंत्र ज्ञान की पर्याय है, निरपेक्ष है। ज्ञेय से ज्ञान तीनकाल में किसी को होता नहीं है। शास्त्र से ज्ञान हुआ ही नहीं, आज तक किसी को। जो कुम्भार से घड़ा हो, तो शास्त्र से ज्ञान (हो)। दो द्रव्य भिन्न-भिन्न हैं। एक द्रव्य के कारण से दूसरे द्रव्य की पर्याय होती (नहीं)। छाबड़ा जी! ऐसी बात है। वो व्यवस्था में तो लगाते हैं आप, अब इसमें ज़्यादा लगाना, अभी थोड़ा। अपना हित इसमें है। आहाहा! वो तो चलेगा। आहाहा! उसमें तो कषाय की प्रवृत्ति होती है। क्या करें? आहाहा! कौन बोलता है?

अच्छा! लुहाड़िया जी! उसकी आवाज़ ही जुदी जाति की है। उसकी जो आवाज़ है ना, वो जुदी जाति की है। ऐसी कोई किसी की आवाज़ नहीं निकलती है, ऐसी (उसकी) आवाज़ निकलती है। आवाज़

ही जुदी टाइप की है। पूनमभाई का भाई है ना?

आहाहा! **और वह ज्ञान के स्वयं के सामर्थ्य से है।** अपने सामर्थ्य से ज्ञान की पर्याय प्रगट होती है। अपने को जानते-जानते हुए (पर्याय) प्रगट होती है। उपयोग ध्रुव को प्रसिद्ध करके ही प्रगट होता है। उपयोग पर को प्रसिद्ध करके उत्पन्न होता ही नहीं है और आत्मा को अप्रसिद्ध करके भी उत्पन्न होता नहीं है। ध्रुव को प्रसिद्ध करके ही उत्पाद होता है, और व्यय होता है वो भी ध्रुव को प्रसिद्ध करके बाद में व्यय होता है। ऐसे (ही) नहीं व्यय होता है। उत्पाद, ध्रुव को प्रसिद्ध करता है, पर को प्रसिद्ध नहीं करता है। (तब) तो एकांत हो जायेगा। सम्यक्एकांत हो जायेगा। इष्ट! हमको इष्ट है। कोई परेशानी नहीं है। सम्यक्एकांतपूर्वक अनेकांत भी हो जायेगा। घबराना मत। आहाहा! सम्यक्एकांतपूर्वक अनेकांत होता ही है। जो सम्यक्एकांतपूर्वक अनेकांत न हो, तो वो सम्यक्एकांत नाम नहीं पाता है। मिथ्याएकांत में चले जाता है।

(प्रवचनसार की) ८० नंबर की गाथा में.... एक जयसेन आचार्य भगवान की टीका है। प्रवचनसार की ८० नंबर की गाथा में, उसके अंदर बहुत मार्मिक बात (है)। जेसा है, अनुभव में आता है, अनुभव के समय में क्या होता है? वो अनुभव की बात उसमें लिख दी है। सम्यक्एकांतपूर्वक अनेकांत होता है। अनेकांतिक ज्ञान होता है। उसमें लिखा कि जो द्रव्य सामान्य है, वो तो उपादेय-तत्व है। उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है। वो तो निर्विवाद बात है, उसमें तो कोई शंका-आशंका की बात है ही नहीं। त्रिकाली ज्ञायक परमात्मा के अवलम्बन से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का परिणाम होता ही है, तीनों परिणाम। आहाहा! मगर उसमें लिखा (है) कि ऐसा द्रव्यस्वभाव का जिसको पक्ष आ गया, पक्ष... अनुभव के पहले पक्ष आता है। बाद में पक्षातिक्रांत होकर अनुभव हो जाता है। तो जिसको ऐसा द्रव्यस्वभाव का पक्ष आ गया, तो मोह के क्षय का कारण तो उसके हाथ में आ गया। मगर उससे मोह क्षय नहीं होता है। ये क्या बात है? उन्होंने कलम चलायी कि जहाँ तक उपयोग आत्मा में अभेद नहीं होता है और द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों का अभेदरूप, ज्ञेयरूप ज्ञान नहीं होता है, वहाँ तक सम्यग्दर्शन होता नहीं है। सम्यक्एकांतपूर्वक अनेकांत हो गया कि नहीं? अकेला सामान्य कहाँ रहा? सामान्य का श्रद्धान और सामान्य-विशेष का ज्ञान, समय (एक)। दो नहीं? आहाहा!

एक समय में बनाव बनता है, अनुभव के काल में, निर्विकल्प ध्यान में। आहाहा! तो वहाँ मोह क्षय हो जाता है। मोह क्षय की प्रक्रिया चालू हो गई। करणलब्धि के परिणाम में भी आ जावे, मगर जहाँ तक उपयोग शुद्धोपयोग होकर आत्मा को अभेद नहीं जान लेवे, ज्ञेय नहीं बने....ध्येय तो बना, मगर, ध्यान का ध्येय तो बन गया, मगर ज्ञान का ज्ञेय बनना चाहिए सामान्य-विशेष दो ही आत्मा। तो सम्यक्एकांतपूर्वक अनेकांत का ज्ञान, साथ में, एक समय में हो जाता है, तो उसका नाम अनुभूति है। पाँच मिनट का टाइम है।

यह व्यवहार से कहा है, हों। वास्तव में तो ज्ञेयों का-छह द्रव्य का जैसा स्वरूप है, उसे जानने के विशेषरूप परिणमित होना, वह ज्ञान की अपनी दशा है और वह दशा ज्ञान के स्वयं के सामर्थ्य से है। ज्ञेयों के आकाररूप होता हुवा ज्ञान, इन्टू कोमा **ज्ञेयों के आकाररूप होता हुवा ज्ञान**, यानि जैसा ज्ञेय है, ऐसा इधर प्रतिभास होता है, इसका नाम आकार। वह कहा। **यह तो कथनमात्र है,**

आहाहा! बात तो सूक्ष्म है! अभी तो सूक्ष्म ही करनी चाहिए ना? आहाहा!

रोटी तो रोज़ मिलती है, रोज़। मगर मैसूब का कोई भोजन तो चाहिए कि नहीं? आहाहा! ये बादाम के मैसूब की बात चलती है, आटे का नहीं मैसूब। यह शिविर का दिन है ना। पूरा दिन, टाइम निकालकर सब इधर आये है ना? आहाहा! आत्मस्वरुप समझने के लिए अपना व्यापार-धंधा, सब सुविधा-असुविधा देखकर कहीं ठहरना, उतरना, तबियत, किसी को डायबिटीज़ किसी को क्या, किसी को ब्लड प्रेशर, तो भी आत्मा का स्वरुप समझने के लिए इधर आते हैं कि नहीं? आहाहा!

क्या कहा? **वह तो कथनमात्र है।** आहाहा! व्यवहार का पक्ष इतना दृढ़ हो गया है और निश्चय का पक्ष आये बिना, वो गलता नहीं है, टलता भी नहीं है। **ज्ञेयों के आकार से होनेवाले ज्ञान...वह तो कहनेमात्र है। सचमुच ज्ञान, ज्ञानाकर ही है**; ज्ञेयाकार नहीं। **ज्ञानाकार ही है**, 'ही' शब्द लगाया। 'भी' नहीं। 'भी' में प्रमाण आ जाता है। 'ही' में नय आ जाता है। नय में अनुभव होता है, तब प्रमाण हो जाता है। **ज्ञेयाकार है ही नहीं।** आहाहा! देखो! लिखा है कि नहीं पवनभाई? **ज्ञेयाकार है ही नहीं।** यानि ये (ज्ञेय-शास्त्र) जानने में आता ही नहीं (है)। मेरा ज्ञानानंद परमात्मा ही जानने में आता है, तो उसका नाम ज्ञानाकार बन जाता है। उसको (ज्ञेय को) जानता है, तो ज्ञेयाकार बन जाता है। छोड़ दे ज्ञेय को और ज्ञेय के प्रतिभास को भी छोड़ दे। गौण करके, गर्भित करके, अभूतार्थ करके, ज्ञायक को जान ले, तो उसका नाम ज्ञानाकार है। आहाहा! **ज्ञेयाकार है ही नहीं।** आहाहा!

ये गुरुदेव को जिसने यहाँ बिठाया हो ना, श्रद्धा में, उसको यह वचन लागू पड़े। और जो इस वचन को नहीं माने, तो गुरुदेव को मानता नहीं (है)। आहाहा! शिरोमान्य कर ले। नरम हो जा। तेरी मान्यता को छोड़ दे, अभी। हित का काल है। आहाहा! समय पक गया है तेरा।

ज्ञेयाकार है ही नहीं। समझ में आया कुछ? की साहब थोड़ा-थोड़ा तो समझ में अभी आता है। ठीक है! थोड़ा-थोड़ा सत्य का हकार आता है ना, तो अच्छी बात है। समझे? क्योंकि हमारे पास जमा की किताब है, उधार की किताब नहीं है। थोड़ी हाँ बोले ना, आहाहा! बहुत अच्छी बात है। थोड़े भी हाँ बोलता है ना, तो कल ज़्यादा उसको समझ में आ जायेगा। इसमें क्या है? भगवान आत्मा हैं सब।

आहाहा! **यहाँ कहते हैं कि यह ज्ञान की पर्याय और मेरे द्रव्य-गुण (द्रव्य-गुण-पर्याय) तीनों मिलकर मैं ज्ञेय हूँ।** द्रव्य-गुण-पर्यायरूप मैं ज्ञेय हूँ, ऐसा अभी आया था ना? वो प्रवचनसार की ८० नंबर की गाथा में नहीं कहा? द्रव्य, गुण और पर्याय, ऐसा अभेद ज्ञेय मैं (हूँ)। ध्येय तो हूँ मगर ज्ञेय भी ऐसा हो जाता है, अनुभव के काल में।

ज्ञान मैं, ज्ञाता मैं और ज्ञेय यह लोकालोक-ऐसा किसने कहा? ज्ञानमय मैं, मैं ज्ञानरूप हूँ और मैं ज्ञातारूप हूँ। ज्ञान और ज्ञाता को इधर रखा। इधर रखा और ज्ञेय लोकालोक है, (ऐसा) किसने कहा? ऐसा है नहीं। आहाहा! ये क्या? केवली भगवान लोकालोक को नहीं जानता है? आहाहा! शांति से सुन। आहाहा! ज़रा शांति रख। आहाहा! क्या लिखते हैं, अपना गुरुतत्व क्या लिखते हैं? आहाहा! जानने के लोभ में पूरा यह संसार है। ऐसा हाथ करे हों! जानने के लोभ में पूरा संसार है। आहाहा! प्रमाण के बाहर गया। इसने ये किया, इसने ऐसा किया, वैसा किया और उसने वैसा किया। तू छोड़ ना माथाकूट। आहाहा!

इधर का बनाव है युगलजी की लड़की, क्या? अर्चना क्या? अर्चना ना? हाँ! अर्चना। वो लड़की

(और) उसकी माँ ऊपर आये। बहुत साल पहले की बात है। तो वो दोपहर को आये थे, तो सब बैठे थे, चर्चा चली। तो ये व्याख्यान में कहा था कि प्रमाण के बाहर जाना नहीं और प्रमाण में अटकना नहीं। उसने पकड़ लिया। लड़की छोटी थी। उस टाइम तो शादी या सगाई या कुछ (हुई) नहीं थी, उसकी। आहाहा! बाद में, पंडितजी था। अच्छा! तो उसने कहा कि पंडित जी! आपकी बात बहुत अच्छी आयी। मैंने कहा क्या, बेटा क्या आई? कि प्रमाण के बाहर जाना नहीं और प्रमाण में अटकना नहीं। ओहो! किसकी लड़की हो तुम? मैं तो पहचानता नहीं। उसकी माता भी बाजू में बैठी थी। मैंने पहचाना नहीं, शुरुआत में। किसकी लड़की हो तुम? कहाँ की रहनेवाली हो? तो किसी ने कहा, अरे! ये तो युगलजी की लड़की है। अच्छा! सिंह का बच्चा तो सिंह (ही) होता है। आहाहा!

प्रमाण के बाहर जाना नहीं यानि लोकालोक को जानता मैं हूँ, वो प्रमाण से बाहर निकल गया। आहाहा! मैं राग को जानता हूँ, वो प्रमाण में अटक गया। स्व-पर दो को जानता हूँ, वो प्रमाण में अटक गया। पर को जानता ही नहीं हूँ और स्व को जानता ही हूँ, तो सम्यक्एकांत में आकर अनुभव हो जाता है।

उसका तो नाम है, अर्चना का तो नाम है। समझने के लिए, सबके लिए। किसी की प्रशंसा की बात नहीं है। बनाव ऐसा बन गया है।